विषय परिचय

वेदना अनुयोगद्वारके मुख्य अधिकार सोलह हैं । उनमेंसे जिन अन्तिम दस अधिकारोंकी इस पुस्तकमें प्ररूपणा की है उनके नाम ये हैं-- वेदनाभावविधान, वेदनाप्रत्ययविधान, वेदनास्वामित्वविधान, वेदनावेदनाविधान, वेदनागतिविधान, वेदनाअनन्तरविधान, वेदनासन्निकर्षविधान, वेदनापरिमाणविधान, वेदनाभागाभागविधान और वेदनाअल्पबहुत्वविधान ।

७ वेदनाभावविधान

भावके चार भेद हैं-- नामभाव, स्थापनाभाव, द्रव्यभाव और भावभाव । उनमें से भाव शब्द नामभाव है तथा सद्भाव या असद्भावरूपसे 'वह यह है' इस प्रकार अभेदरूपसे सङ्कल्पित पदार्थ स्थापनाभाव है । द्रव्यभावके दो भेद हैं-- आगमद्रव्यभाव और नोआगमद्रव्यभाव । भावविषयक शास्त्रका जानकार किन्तु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित जीव आगमद्रव्यभाव है । नोआगमद्रव्यभाव तीन प्रकारका है-- ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्त । जो भावविषयक शास्त्रके जानकारका त्रिकालविषयक शरीर है वह ज्ञायकशरीर नोआगमद्रव्यभाव है और जो भविष्यमें भावविषयक शास्त्रका जानकार होगा वह भाविनोआगमद्रव्यभाव है । तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यभावके दो भेद हैं - कर्म और नोकर्म । ज्ञानावरणादि कर्मोंकी अज्ञानादिको उत्पन्न करानेवाली जो शक्ति है उसे कर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यभाव कहते हैं और इसके सिवा अन्य जितनी सचित्त और अचित्तद्रव्य सम्बन्धी शक्तियाँ हैं उन्हें नोकर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यभाव कहते हैं । भावभावके दो भेद हैं- आगमभावभाव और नोआगमभावभाव । भावविषयक शास्त्रका जानकार और उपयोगयुक्त जीव आगमभाव कहलाता है तथा नोआगमभावभावके दो भेद हैं-- तीव्रमन्दभाव और निर्जराभाव ।

इन सब भावोंमेंसे वेदनाभावविधानमें कर्मतद्व्यतिरिक्त नोंआगमद्रव्यकी पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व इन तीन अधिकारों द्वारा प्ररूपणा की गई है ।

पदमीमांसामें ज्ञानावरणादि आठ मूल कर्मोंकी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य भाववेदनाओंका विचार किया गया है । यहाँ वीरसेन स्वामीने धवला टीकामें उत्कृष्ट आदि पूर्वोक्त चार पदोंके साथ सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव, ओज, युग्म, ओम, विशिष्ट और नोमनोविशिष्ट इन अन्य नौ पदोंको देशामर्शकभावसे सूचित कर इन तेरह पदोंके परस्पर सन्निकर्षकी भी प्ररूपणा की है । मात्र ऐसा करते हुए वे कहाँ किस अपेक्षासे उत्कृष्ट आदि पद स्वीकार किये गये है इस दृष्टिकोणका पृथक् पृथक् रूपसे उल्लेख करते गये हैं । इसके लिए प्रस्तुत पुस्तकका पृष्ठ ग्यारहका कोष्टक द्रष्टव्य है ।

स्वामित्व अनुयोगद्वारमें ज्ञानावरणादि आठ मूल प्रकृतियोंके आश्रयसे इन उत्कृष्ट आदि चार पदोंकी अपेक्षा स्वामी बतलाये गये हैं ।

अल्पबहुत्व अनुयोगद्वारके जघन्य, उत्कृष्ट और जघन्योत्कृष्ट ऐसे तीन भेद करके इनके द्वारा अलग अलग आठ मूल प्रकृतियोंके आश्रयसे अल्पबहुत्वका विचार तो किया ही है, साथ ही उत्तर प्रकृतियोंके आश्रयसे चौंसठ पदवाले उत्कृष्ट और जघन्य अल्पबहुत्वका भी विचार किया गया है । यहाँ दो बातें उल्लेखनीय हैं । प्रथम तो यह कि इन दोनों प्रकारके चौसठ पदवाले अल्पबहुत्वका निर्देश पहले क्रमसे सूत्र गाथाओंमें किया गया है और फिर उन्हींको गद्यसूत्रों में दिखलाया गया है । द्वितीय यह कि वीरसेन स्वामीने इन दोनों प्रकारके अलपबहुत्वोंसे सूचित होनेवाले स्वस्थान अल्पबहुत्वका निर्देश अपनी धवला टीकामें अलगसे किया है ।

इसके आगे इसी वेदनाभाव विधानको क्रमसे प्रथम, द्वितीय और तृतीय ये तीन चूलिकाएँ चालू होती हैं । जिस प्रकरणमें विवक्षित अनुयोगद्वारमें कहे गये विषयका अवलंबन लेकर विशेष व्याख्यान किया जाता है उसे चूलिका कहते हैं । इसलिए चूलिका सर्वथा स्वतंत्र प्रकरण न होकर विवक्षित अनुयोगद्वारका ही एक अंग माना जाता है । ऐसी यहाँ क्रमसे तीन चूलिकायें निर्दिष्ट हैं ।

प्रथम चूलिकामें गुणश्रेणिनिर्जरा किसके कितनी गुणी होती है और उसमें लगनेवाले कालका क्या प्रमाण है, इसका विचार किया गया है । यहाँ गुणश्रेणिनिर्जराके कुल स्थान ग्यारह बतलाये हैं । यथा– सम्यक्त्वकी उत्पत्ति, श्रावक, विरत, अनंतानुबंधीकी विसंयोजना करनेवाला, दर्शनमोहका क्षपक, चारित्रमोहका उपशामक, उपशांतकषाय, क्षपक, क्षीणमोह, स्वस्थान जिन और योगनिरोधमें प्रवृत्त हुए जिन । इन ग्यारह स्थानोंमें गुणश्रेणि निर्जरा उत्तरोत्तर असंख्यातगुणी होती है । किंतु इसमें लगनेवाला काल उत्तरोत्तर संख्यातगुणा हीन जानना चाहिए । अर्थात् प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके समय गुणश्रेणि निर्जरामें जो अंतर्मुहूर्त काल लगता है उससे श्रावक के होनेवाली गुणश्रेणि निर्जरामें संख्यातगुणा हीन अंतर्मुहूर्त काल लगता है । इस प्रकार आगे–आगे हीन–हीन काल जानना चाहिए । तत्त्वार्थसूत्रके 'सम्यग्दृष्टिश्रावक' इत्यादि सूत्रकी व्याख्या करते हुए सर्वार्थसिद्धिमें ये गुणश्रेणिके स्थान कुल दस गिनाये हैं । वहाँ जिनके दो भेदोंका आश्रय कर प्रतिपादन नहीं करना इसका कारण है । यहाँ पहले दो सूत्र गाथाओंमें इन ग्यारह गुणश्रेणि निर्जरा और उनके कालका विचार कर अनंतर गद्यसूत्रों द्वारा इनका स्वतंत्र विचार किया गया है ।

द्वितीय चूलिका आगे अनुभागबन्धाध्यवसान स्थानका कथन करनेके लिए प्रारम्भ होती है । इस प्रकरणके बारह अनुयोगद्वार हैं– अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा, स्थानप्ररूपणा, अन्तरप्ररूपणा, काण्डकप्ररूपणा, ओजयुग्मप्ररूपणा, षट्स्थानप्ररूपणा, अधस्तनस्थानप्ररूपणा, समयप्ररूपणा, वृद्धिप्ररूपणा, यवमध्यप्ररूपणा, पर्यवसानप्ररूपणा और अल्पबहुत्वप्ररूपणा ।

(१) अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा – कर्मोंके जितने भेद–प्रभेद उपलब्ध होते हैं उनमें हीनाधिक अनुभाग शक्ति पाई जाती है । यह शक्ति कहाँ कितनी होती है इसका विचार अनुभागशक्तिमें उपलब्ध होनेवाले अविभागप्रतिच्छेदोंके आधारसे किया जाता है । अविभागप्रतिच्छेद उन शक्त्यंशोंकी संज्ञा है जो विभागके अयोग्य होते हैं । शक्तिका यह विभाग बुद्धिद्वारा किया जाता है । उदाहरणार्थ, एक ऐसी शक्ति लो जो सर्वाधिक हीन दर्जेकी है । पुन: इससे दूसरे दर्जेकी शक्ति लो और देखो कि इन दोनों शक्तियोंमें कितना अन्तर है और उस अन्तरका कारण क्या है ?। अनुभवसे प्रतीत होगा कि पहली शक्तिसे दूसरी शक्तिमें जो एक शक्त्यंशकी वृद्धि दिखाई देती है उसीका नाम अविभागप्रतिच्छेद है । अनुभागसंबंधी ऐसे अविभागप्रतिच्छेद एक अनुभागस्थानमें अनन्तानन्त उपलब्ध होते हैं । यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि जितने कर्मपरमाणुओंमें ये अविभागप्रतिच्छेद समान उपलब्ध होते हैं उनमेंसे प्रत्येक कर्मपरमाणुके अविभागप्रतिच्छेदोंकी वर्ग संज्ञा है और वे सब कर्मपरमाणु मिलकर वर्गणा कहलाते हैं । यह प्रथम वर्गणा है । पुन: इसके एक अधिक अविभागप्रतिच्छेदको लिए हुए जितने कर्मपरमाणु होते हैं उनकी दूसरी वर्गणा बनती है । इस प्रकार निरन्तर क्रमसे एक एक अविभागप्रतिच्छेदकी वृद्धिके साथ तीसरी आदि वर्गणाएँ जहाँ तक उत्पन्न होती हैं उन सबकी स्पर्धक संज्ञा है । एक स्पर्धकमें ये वर्गणाएँ अभव्योंसे अनन्तगुणी और सिद्धोंके अनन्तवें भाग उपलब्ध होती हैं यह प्रथम स्पर्धक है । इसके आगे सब जीवोंसे अनंतगुण अविभागप्रतिच्छेदोंका अन्तर देकर द्वितीय स्पर्धक प्रारम्भ होता है । और जहाँ जाकर द्वितीय स्पर्धककी समाप्ति होती है उससे आगे भी उत्तरोत्तर इसी प्रकार अन्तर देकर तृतीयादि

स्पर्धक प्रारम्भ होते हैं जो प्रत्येक अभव्योंसे अनन्तगुणी और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण वर्गणाओंसे बनते हैं । इस प्रकार अविभागप्रतिच्छेद प्ररूपणामें कहाँ कितने अविभागप्रतिच्छेद होते हैं इसका विचार किया जाता है ।

(२) स्थानप्ररूपणा- इसप्रकार पूर्वोक्त अन्तरको लिए हुए जो अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण स्पर्धक उत्पन्न होते हैं उन सबका एक स्थान होता है । यहाँ पर एक जीवमें एक समयमें जो कर्मोंका अनुभाग दिखाई देता है उसकी स्थान संज्ञा है । उसके दो भेद हैं- अनुभागबन्धस्थान और अनुभागसत्त्वस्थान । उनमेंसे जो अनुभाग बन्ध द्वारा निष्पन्न होता है उसकी तो अनुभागबन्धस्थान संज्ञा है ही । साथ ही पूर्वबद्ध अनुभागका घात होनेपर तत्काल बन्धको प्राप्त हुए अनुभागके समान जो अनुभाग प्राप्त होता है उसकी भी अनुभागबन्धस्थान संज्ञा है । किन्तु जो अनुभागस्थान घातको प्राप्त होकर तत्काल बन्धको प्राप्त हुए अनुभागके समान न होकर बन्धको प्राप्त हुए अष्टांक और ऊर्वंकके मध्यमें अधस्तन ऊर्वंकसे अनन्तगुणा और उपरिम अष्टांकसे अनन्तगुणा हीन होता है उसे अनुभागसत्कर्मस्थान कहते हैं। यदि इन प्राप्त हुए स्थानोंको मिलाकर देखा जाय तो ये सब असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं । इस प्रकार स्थानप्ररूपणामें इन सब स्थानोंका विचार किया जाता है ।

(३) अन्तरप्ररूपणा- स्थानप्ररूपणामें कुल स्थान कितने होते हैं यह तो बतलाया है, किन्तु वहाँ उनमें परस्पर कितना अन्तर होता है इसका विचार नहीं किया गया है । इसलिए इस प्ररूपणाका अवतार हुआ है । इसमें बतलाया गया है कि एक स्थानसे तदनन्तरवर्ती स्थानमें अविभागप्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा सब जीवोंसे अनंतगुणा अंतर होता है । जो जघन्य स्थानांतर है वह भी सब जीवोंसे अनंतगुणा है, क्योंकि, एक अनन्तभाग वृद्धिप्रक्षेपमें सब जीवोंसे अनंतगुणे अविभागप्रतिच्छेद उपलब्ध होते हैं । इस प्रकार इस प्ररूपणामें विस्तारके साथ अन्तरका विचार किया गया है ।

(४) काण्डकप्ररूपणा- कुल वृद्धियाँ छह हैं - अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि । इनमेंसे अनन्तभागवृद्धि काण्डकप्रमाण होनेपर एकबार असंख्यातभागवृद्धि होती है । पुनः काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धि होनेपर दूसरीबार असंख्यातभागवृद्धि होती है । इस प्रकार पुनः पुनः पूर्वोक्त क्रमसे जब असंख्यातभागवृद्धि काण्डकप्रमाण हो लेती है तब एकबार संख्यातभागवृद्धि होती है । इस प्रकार अनन्तगुणवृद्धिके प्राप्त होनेतक यही क्रम जानना चाहिए । यहाँ काण्डकसे अङ्गुलका असंख्यातवाँ भाग लिया गया है । यहाँ एक स्थानमें इन वृद्धियोंका विचार करनेपर वे किस प्रकार उपलब्ध होती हैं इसकी चर्चा प्रस्तुत पुस्तकके पृष्ठ १३२ में की ही है । उसके आधारसे काण्डकप्ररूपणाको विस्तारसे समझ लेना चाहिये ।

(५) ओज-युग्मप्ररूपणा- जहाँ विवक्षित राशिमें चारका भाग देनेपर १ या ३ शेष रहते हैं उसकी ओज संज्ञा है और जहाँ २ शेष रहते हैं या कुछ भी शेष नहीं रहता है उसकी युग्म संज्ञा है । इस आधारसे इस प्ररूपणामें यह बतलाया गया है कि सब अनुभागस्थानोंके अविभागप्रतिच्छेद तथा सब स्थानोंकी अन्तिम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद कृतयुग्मरूप हैं और द्विचरम आदि वर्गणाओंके अविभागप्रतिच्छेद कृतयुग्मरूप ही हैं यह नियम नहीं हैं, क्योंकि, उनमेंसे कोई कृत युग्मरूप, कोई बादर युग्मरूप कोई कलि औजरूप और कोई तेज ओजरूप उपलब्ध होते हैं ।

(६) षट्स्थानप्ररूपणा- पहले हम अनन्तभागवृद्धि आदि छह स्थानोंका निर्देश कर आये हैं । उनमें अनन्त, असंख्यात और संख्यात पदोंसे कौनसी राशि ली गई है इन सब बातोंका विचार इस प्ररूपणामें किया गया है ।

(७) अधस्तनस्थानप्ररूपणा- इसमें अनन्तभागवृद्धिसे लेकर प्रत्येक वृद्धि जब काण्डक प्रमाण हो लेती है तब अगली वृद्धि होती है । अनन्तगुणवृद्धिके प्राप्त होनेतक यही क्रम चालू रहता है । यह बतलाकर एक षट्स्थानवृद्धिमें अनन्तभागवृद्धि कितनी होती हैं, संख्यातभागवृद्धि कितनी होती हैं आदिका निरूपण किया गया है ।

(८) समयप्ररूपणा- जघन्य अनुभागबन्धस्थानसे लेकर उत्कृष्ट अनुभागबन्धस्थान तक जितने अनुभागबन्धस्थान होते हैं उनमेंसे एक समयसे लेकर चार समयतक बन्धको प्राप्त होनेवाले अनुभागबन्धस्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं । पाँच समय बंधनेवाले अनुभागबन्धस्थान भी असंख्यात लोकप्रमाण हैं । इस प्रकार चार समयसे लेकर आठ समयतक बंधनेवाले अनुभागबन्धस्थान और पुन: सात समयसे लेकर दो समयतक बंधनेवाले अनुभागबन्धस्थान प्रत्येक असंख्यात लोकप्रमाण हैं । यह बतलाना समयप्ररूपणाका कार्य है । साथ ही यद्यपि ये सब स्थान असंख्यातलोकप्रमाण हैं फिर भी इनमें सबसे थोडे कौन अनुभागबन्धस्थान हैं और उनसे आगे उत्तरोत्तर वे कितने गुणे हैं यह बतलाना भी इस प्ररूपणाका कार्य है ।

(९) वृद्धिप्ररूपणा- इस प्ररूपणामें पहले अनन्तभागवृद्धि आदि छह वृद्धियोंका व अनंतभागहानि आदि छह हानियोंका अस्तित्व स्वीकार करके उनके कालका निर्देश किया गया है ।

(१०) यवमध्यप्ररूपणा- समय प्ररूपणामें छह वृद्धियों और छह हानियोंका किसका कितना काल है यह बतला आये हैं । तथा वहाँ उनके अल्पबहुत्वका भी ज्ञान करा आये हैं । फिर भी किस वृद्धि और हानिसे यवमध्यका प्रारम्भ और अन्त होता है यह बतलानेके लिए यवमध्यप्ररूपणा की गई है। यद्यपि यवमध्य कालयवमध्य और जीवयवमध्यके भेदसे दो प्रकारका होता है पर यहाँ पर कालयवमध्यका ही ग्रहण किया गया है, क्योंकि, इसमें वृध्दियों और हानियोंके कालकी मुख्यतासे ही इसकी रचना की गई है ।

(११) पर्यवसानप्ररूपणा- अनंतगुणवृद्धिरूप कांडकके ऊपर पाँच वृद्धिरूप सब स्थान जाकर पुन: अनन्तगुणवृद्धि रूप स्थान नहीं प्राप्त होता, यह बतलाना इस प्ररूपणाका कार्य है ।

(१२) अल्पबहुत्वप्ररूपणा- इसके दो भेद हैं- अनंतरोपनिधा और परंपरोपनिधा । अनंतरोपनिधा अल्पबहुत्वमें अनंतगुणवृद्धिस्थान सबसे थोडे हैं । इनसे असंख्यातगुणवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे है । इसी प्रकार आगे संख्यातगुणवृद्धिस्थान, संख्यातभागवृद्धिस्थान, असंख्यातभागवृद्धिस्थान और अनंतभागवृद्धिस्थान उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे हैं, यह बतलाया गया है । तथा परम्परोपनिधा अल्पबहुत्वमें अनन्तभागवृद्धिस्थान सबसे थोडे हैं । इनसे असंख्यातभागवृद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं । तथा इनसे संख्यातभागवृद्धिस्थान संख्यातगुणे हैं आदि बतलाया गया है ।

इस प्रकार अनुभागबन्धस्थानके आश्रयसे यह प्ररूपणा समाप्त कर अन्तमें वीरसेन स्वामीने अनुभागसत्कर्मके आश्रयसे यह सब विचार कर दूसरी चूलिका समाप्त की है ।

तीसरी चूलिकामें जीवसमुदाहारका विचार किया गया है । इसके ये आठ अनुयोगद्वार हैं- एकस्थानजीवप्रमाणानुगम, निरंतरस्थानजीवप्रमाणानुगम, सान्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम, नानाजीवकाल-प्रमाणानुगम, वृद्धिप्ररूपणा, यवमध्यप्ररूपणा, स्पर्शनप्ररूपणा और अल्पबहुत्व ।

(१) एकस्थानजीवप्रमाणानुगम- एक स्थानमें जघन्यरूपसे जीव एक, दो या तीन होते हैं और उत्कृष्ट रूपसे आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं, यह बतलाना इस प्ररूपणा का कार्य है ।

२) निरन्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम- इस प्ररूपणामें जीवोंसे सहित निरन्तर स्थान एक, दो या तीनसे लेकर अधिकसे अधिक आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं यह बतलाया गया है ।

३) सान्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम- इस प्ररूपणामें जीवोंसे रहित स्थान कमसे कम एक, दो और तीनसे लेकर अधिकसे अधिक असंख्यातलोकप्रमाण होते हैं यह बतलाया गया है ।

४) नानाजीवकालप्रमाणानुगम- इस प्ररूपणामें एक-एक स्थानमें नाना जीव जघन्यसे एक समय तक और उत्कृष्टसे आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक होते हैं, यह बतलाया गया है ।

५) वृद्धिप्ररूपणा- इसके दो भेद हैं- अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा । अनन्तरोपनिधामें जघन्य स्थानसे लेकर द्वितीयादि स्थानोंमें कितने जीव होते हैं, यह बतलाया गया है तथा परम्परोपनिधामें जघन्य अनुभागस्थानमें जितने जीव हैं उनसे असंख्यातलोक जाकर वे दूने हो जाते हैं, इत्यादि बतलाया गया है ।

६) यवमध्यप्ररूपणा- इस प्ररूपणामें सब स्थानोंका असंख्यातवाँ भाग यवमध्य होता है यह बतलाकर यवमध्यके नीचेके स्थान सबसे थोडे हैं और उपरिम स्थान असंख्यातगुणे हैं यह बतलाया गया है ।

७) स्पर्शनप्ररूपणा- इस प्ररूपणामें उत्कृष्ट अनुभागबन्धस्थान, जघन्य अनुभागबन्धस्थान, काण्डक और यवमध्य आदिका एक जीवके द्वारा स्पर्शन काल कितना है, इसका विचार किया गया है ।

८) अल्पबहुत्व- उत्कृष्ट अनुभागस्थान, जघन्य अनुभागस्थान, काण्डक और यवमध्यमें कहाँ कितने जीव हैं इसके अल्पबहुत्वका विचार इस प्ररूपणामें किया गया है ।

८ वेदनाप्रत्ययविधान

इस अनुयोगद्वारमें नैगमादि नयोंके आश्रयसे ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंकी वेदनाके बन्धकारणोंका विचार किया गया है । यथा- नैगम, व्यवहार और संग्रह नयकी अपेक्षा सब कर्मोंकी वेदनाका बन्ध प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, रात्रिभोजन, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह, प्रेम, निदान, अभ्याख्यान, कलह, पैशुन्य, रति, अरति, उपधि, निकृति, मान, माया, मोष, मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन और प्रयोगसे होता है । ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षा प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध योगसे तथा स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध कषायसे होता है । शब्दनयकी अपेक्षा किससे किसका बन्ध होता है यह कहना सम्भव नहीं है, क्योंकि, इस नयमें कार्यकारणसम्बन्ध नहीं बनता ।

९ वेदनास्वामित्वविधान

इस अनुयोगद्वारमें ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंके स्वामीका विचार किया गया है । ऐसा करते हुए नयभेदसे ये भंग आये हैं- नैगम और व्यवहारनयकी अपेक्षा ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंकी वेदनाका कथंचित् एक जीव स्वामी है, कथंचित् नोजीव स्वामी है, कथंचित् नाना जीव स्वामी हैं, कथंचित् नाना नोजीव स्वामी हैं, कथंचित् एक जीव और एक नोजीव स्वामी है, कथंचित् एक जीव और नाना नोजीव स्वामी हैं, कथंचित् एक जीव और एक नोजीव स्वामी हैं, तथा कथंचित् नाना जीव और नाना नोजीव स्वामी हैं । यहाँ पर जीव और नोजीव पदकी व्याख्या करते हुए वीरसेन स्वामीने बतलाया है कि जो अनन्तानन्त विस्रसोपचयसहित कर्मपुद्गल स्कन्ध उपलब्ध होते हैं वे जीवसे पृथक् न पाये जानेके कारण जीवपदसे लिए गये हैं । तथा वे ही अनन्तानन्त विस्रसोपचयसहित कर्मपुद्गल स्कन्ध ही

प्राणधारण शक्तिसे रहित होनेके कारण अथवा ज्ञानदर्शन शक्तिसे रहित होनेके कारण नोजीव कहलाते हैं । अथवा उनसे सम्बन्ध रखनेके कारण जीवको भी नोजीव कहते हैं । संग्रह नयकी अपेक्षा इन ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंकी वेदनाका कथंचित् एक जीव स्वामी है और कथंचित् नाना जीव स्वामी हैं । तथा शब्द और ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षा इन ज्ञानावरणादि वेदनाका एक जीव स्वामी है । यहाँ इन नयोंकी अपेक्षा एक जीवको स्वामी कहनेका कारण यह है कि ये नय बहुवचनको स्वीकार नहीं करते ।

१० वेदनावेदनाविधान

इस अनुयोगद्वारमें सर्वप्रथम नैगमनयकी अपेक्षा जीव, प्रकृति और समय इनके एकत्व और अनेकत्वका आश्रय करके ज्ञानावरण वेदनाके एकसंयोगी, द्विसंयोगी और त्रिसंयोगी भंगोंका प्ररूपणा किया गया है । यथा– ज्ञानावरणीय वेदना कथंचित् बध्यमान वेदना है, कथंचित् उदीर्ण वेदना है, कथंचित् उपशांत वेदना है, कथंचित् बध्यमान वेदनायें हैं, कथंचित् उदीर्ण वेदनाएँ हैं, कथंचित् उपशान्त वेदनाएँ हैं, इत्यादि । यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि इन भंगोंका विवेचन करते हुए वीरसेन स्वामीने विवक्षाभेदसे इन भंगोंके अन्य अनेक अवान्तर भंगोंका भी निर्देश किया है । नैगमनयकी अपेक्षा शेष सात कर्मोंके भंग ज्ञानावरणके ही समान हैं । आगे व्यवहारनय और संग्रहनयकी अपेक्षा यथासम्भव इन भंगोंका क्रमसे विवेचन करके ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षा आठों कर्मोंके फलप्राप्त विपाकको ही वेदना बतलाया है । शब्दनयका विषय इन सब दृष्टियोंमें अवक्तव्य है, यह स्पष्ट ही है ।

११ वेदनागतिविधान

इस अनुयोगद्वारमें ज्ञानावरणादि कर्मोंकी वेदना अपेक्षाभेदसे क्या स्थित है, क्या अस्थित है या क्या स्थितास्थित है, इस बातका विचार किया गया है । पहले नैगम, संग्रह और व्यवहारनयकी अपेक्षा बतलाया गया है कि ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तरायकी वेदना कथंचित् स्थित है और स्थितास्थित है । तथा वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्मकी वेदना कथंचित् स्थित है, कथंचित् अस्थित है और कथंचित् स्थित–अस्थित है । ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षा विवेचन करते हुए बतलाया गया है कि आठों कर्मोंकी वेदना कथंचित् स्थित है और कथचित् अस्थित है । तथा शब्दनयकी अपेक्षा सब कर्मोंकी वेदना अवक्तव्य है, यह बतलाया है ।

१२ वेदनाअनन्तरविधान

ज्ञानावरणादि कर्मोका बन्ध होनेपर वे उसी समय फल देते हैं या कालन्तरमें फल देते हैं, इस विषयका विवेचन करनेके लिए वेदनाअनन्तरविधान अनुयोगद्वार आया है । इसमें बतलाया गया है कि नैगम और व्यवहारनयकी अपेक्षा ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंकी वेदना अनन्तरबन्ध है, परम्पराबन्ध है और तदुभयबन्ध है । संग्रहनयकी अपेक्षा ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंकी वेदना अनन्तरबन्ध है और परम्पराबन्ध है । ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षा आठों कर्मोंकी वेदना परम्पराबन्ध है और शब्दनयकी अपेक्षा आठों कर्मोंकी वेदना अवक्तव्यबन्ध है ।

१३ वेदनासन्निकर्षविधान

ज्ञानावरणादि कर्मोंकी वेदना द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा उत्कृष्ट भी होती है और जघन्य भी । फिर भी उनमेंसे प्रत्येक कर्मके उत्कृष्ट या जघन्य द्रव्यादि वेदनाके रहनेपर उसीकी क्षेत्रादि

वेदना किस प्रकारकी होती है । तथा विवक्षित एक कर्मकी द्रव्यादि वेदना उत्कृष्ट या जघन्य रहनेपर अन्य कर्मकी द्रव्यादि वेदना उत्कृष्ट या जघन्य किस प्रकारकी होती है, इस बातका विचार करनेके लिए यह वेदनासन्निकर्षविधान अनुयोगद्वार आया है । इस हिसाबसे वेदनासन्निकर्षके स्वस्थानसन्निकर्ष और परस्थानसन्निकर्ष ये दो भेद होकर उनमेंसे प्रत्येकके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा चार-चार भेद करके स्वस्थानवेदनासन्निकर्ष और परस्थानवेदनासन्निकर्षका इस अनुयोगद्वारमें विस्तारके साथ विचार किया गया है ।

१४ वेदनापरिमाणविधान

ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंकी प्रकृतियाँ कितनी हैं इस बातका विवेचन करनेके लिए यह अनुयोगद्वार आया है । इसमें प्रकृतियोंका विचार प्रकृत्यर्थता, समयप्रबद्धार्थता और क्षेत्रप्रत्यास इन तीन प्रकारोंसे किया गया है । **'प्रकृत्यर्थता'** अनुयोगद्वारमें ज्ञानावरणादि कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंकी मुख्यतासे उनकी संख्या बतलाई गयी है । मात्र ज्ञानावरण, दर्शनावरण और नामकर्मकी उत्तर प्रकृतियाँ क्रमसे ५, ९ और ९३ न बतलाकर असंख्यात लोकप्रमाण बतलाई गयीं हैं । ज्ञानावरण और दर्शनावरणकी असंख्यात लोकप्रमाण प्रकृतियाँ क्यों हैं इसका कारण बतलाते हुए वीरसेन स्वामी कहते हैं कि चूँकि ज्ञान और दर्शनके अवान्तर भेद असंख्यातलोक प्रमाण हैं, इसलिए इनको आवरण करनेवाले कर्म भी उतने ही हैं । तथा नामकर्मकी असंख्यातलोकप्रमाण प्रकृतियाँ क्यों हैं इसका कारण बतलाते हुए वीरसेन स्वामी कहते हैं कि चूँकि आनुपूर्वीके भेदोंका तथा गति, जाति और शरीरादिके भेदोंका ज्ञान कराना आवश्यक था, अत: इस कर्मकी असंख्यातलोकप्रमाण प्रकृतियाँ कही हैं । **'समयप्रबद्धार्थता'** अनुयोगद्वारमें प्रत्येक कर्मके अवान्तर भेदोकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण समयप्रबद्धोंसे उस उस कर्मकी अवान्तर प्रकृतियोंको गुणितकर परिमाण लाया गया है । मात्र ऐसा करते हुए आयुकर्मका समयप्रबद्धार्थताकी अपेक्षा परिमाण लाते समय आयुकर्मकी अवान्तर प्रकृतियोंको अन्तर्मुहूर्तसे गुणा कराया गया है । इसका कारण बतलाते हुए वीरसेन स्वामीका कहना है कि आयुकर्मका बन्धकाल यत: अन्तर्मुहूर्त है अत: यहाँ अन्तर्मुहूर्तकालसे गुणा कराया गया है । **'क्षेत्रप्रत्यास'** अनुयोगद्वारमें प्रत्येक कर्मकी समयप्रबद्धार्थतारूप जितनी प्रकृतियाँ उपलब्ध हुईं उनको उस उस प्रकृतिके उत्कृष्ट क्षेत्रसे गुणित करके परिमाण लाया गया है ।

१५ वेदनाभागाभागविधान

इस अनुयोगद्वारमें पूर्वोक्त प्रकृत्यर्थता, समयप्रबद्धार्थता और क्षेत्रप्रत्यासकी अपेक्षा अलग अलग ज्ञानावरणादि कर्मोंकी प्रकृतियोंके भागाभागका विचार किया गया है । यथा-प्रकृत्यर्थताकी अपेक्षा ज्ञानावरण और दर्शनावरणकी प्रकृतियाँ अलग-अलग सब प्रकृतियोंके कुछ कम दो भागप्रमाण बतलाईं हैं और शेष छह कर्मोंकी प्रकृतियाँ अलग-अलग असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाईं हैं । इसी प्रकार समयप्रबद्धार्थता और क्षेत्रप्रत्यासकी अपेक्षा भी किस कर्मकी प्रकृतियाँ सब प्रकृतियोंके कितने भागप्रमाण हैं इसका विचार किया गया है ।

१६ वेदनाअल्पबहुत्वविधान

इस अनुयोगद्वारमें भी प्रकृत्यर्थता, समयप्रबद्धार्थता और क्षेत्रप्रत्यासका आश्रयकर अलग-अलग ज्ञानावरणादि कर्मोंके अल्पबहुत्वका विचार किया गया है ।

इसप्रकार इन सोलह अनुयागद्वारोंकी प्ररूपणा समाप्त होनेपर वेदनाखण्ड समाप्त होता है ।